ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 154-157

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-II, Issues-20, YEAR- June-2021

महात्मा गाँधी का सामाजिक एवं राजनीतिक दर्शन : एक संक्षित अध्ययन

मनोज कुमार

Email- - aaryvrt2013@gmail.com

Received- 04.06.2021, Revised- 08.06.2021, Accepted - 10.06.2021

सारांश : ***महात्मा गाँधी का सामाजिक एवं राजनीतिक विचार तथ्यात्मक होने के बावजूद कहीं अधिक मूल्यात्मक है। गाँधी जी ने यह विचार नहीं किया है कि राज्य या समाज की स्थापना कैसे हुई या कौन से सिद्धान्त अधिक उपयुक्त हैं। वे इस सम्बन्ध में नए सिद्धान्त देने का दावा भी नहीं करते। उनका स्पष्ट उद्देश्य है कि समाज एवं राज्य में अपेक्षित सुधार करते हुए एक सुदृढ़, परिष्कृत एवं स्वस्थ ढांचा तैयार किया जाए। उनके विचारों का समाज एवं राज्य सत्य एवं अहिंसा के उत्कृष्ट मानदण्डों के अनुरूप हो। इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि गाँधी जी के सामाजिक एवं राजनीतिक विचार एक निश्चित आदर्श के अनुरूप सर्जित हुए हैं। वे पूर्णतः एक व्यवहारिक चिन्तक हैं। वे स्वयं को व्यवहारवादी आदर्शवादी चिंतक कहते भी हैं। हम देखते हैं कि प्रायः पारम्परिक समाज–दर्शन की विवेचना समाज के उद्भव के सवाल के साथ प्रारम्भ होती है। महात्मा गाँधी इन सवालों में अपने को नहीं ले जाते। उनका मानना है कि समाज की उत्पत्ति या स्थापना के सम्बन्ध में जो भी सिद्धान्त हैं, वे आपत्ति के लिए नहीं हैं।***

कुंजीभूत शब्द– सामाजीकरण, वैयक्तिकता, व्यवसायोन्मुख, सांस्कृतिक।

वे थॉमस हॉब्स के सामाजिक–समझौते का सिद्धान्त पर भी कोई आलोचना प्रस्तुत नहीं करते जो समाज की उत्पत्ति का कारण मानवों के आपसी समझौते को मानता है। हॉब्स मानते हैं कि व्यक्ति जब यह समझ पाता है कि बगैर सहयोग के जीवन कष्टकर है, तब वह समाज की रचना करता है। समाज की उत्पत्ति के अन्य सिद्धान्तों को देखकर गाँधी इस सूत्र विचार पर पहुँचते हैं कि सभी सिद्धान्त नैतिकता को स्वीकारते हैं। हॉब्स के विचार में भी यह साफ दिखता है कि पूर्ण स्वार्थ का जीवन सम्भव नहीं है। जीने के लिए स्वार्थमूलक प्रवृत्तियों का सीमित किया जाना अत्यावश्यक है। ऐसी ही समझ ने समाज को जन्म दिया है। जब व्यक्ति अपने स्वार्थ से ऊपर उठता है तभी समाज का आर्विभाव होता है। यदि व्यक्ति स्वार्थमूलक प्रवृत्तियों से ही कार्य करे तो हिंसा व संघर्ष अवश्यम्भावी है। ऐसी ही स्थितियों से बचने के लिए समाज की स्थापना हुई है। गाँधी ने समाज की उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धान्तों से कुछ ऐसे ही निष्कर्ष निकाले हैं। उनको समाज निर्माण के नैतिक आधार इन सिद्धान्तों से मिल जाते हैं। वे आधार दो हैं– आत्म बलिदान एवं अहिंसा। अपने स्वार्थ से ऊपर उठना तथा हिंसा का त्याग इन्हीं दो बातों पर समाज का निर्माण निर्भर करता है। आज भी जब हम किसी संस्था का निर्माण करते हैं तो हमें उपरोक्त दोनों मूल्यों को विचार में रखना पड़ता है। हमें यह भी निश्चय करना होता है कि विवाद, झगड़ा तनाव व हिंसा यथा सम्भव दूर रहे। गाँधी यह भी भलीभांति समझते हैं कि वैयक्तिक शुभ तथा सामाजिक शुभ में कोई मौलिक विरोध नहीं है। यदि समाज की स्थापना ही स्वार्थ से ऊपर उठने की प्रवृति में है तो इसका अर्थ है कि स्वार्थ से ऊपर उठना भी अपने हित में ही है।

जब मानव समाज पशुवत् जीवन व्यतीत कर रहा था तो वह भी अन्य पशुओं के समान ही था। जब मानव गिरोहों में सिमटने लगा तब उसका जीवन पशुवत नहीं रहा। अब वह भोजन की तलाश, आखेट, कृषि व पशुपालन जैसे व्यवसाय में लगने लगा। अब उसका जीवन सहयोग में तत्पर होने लगा। श्रम व सहयोग ने मानव जीवन को नई दिशा दी। हम यह मान सकते हैं कि गाँधी ने सामाजिक संस्थाओं का आधार श्रम व सहयोग को माना है। यहाँ उल्लेखनीय है कि कार्ल मार्क्स ने भी श्रम को महत्ता दी है किन्तु मार्क्स के श्रम–विचार में संघर्ष एवं हिंसा के लिए स्थान है जबकि गाँधी जी ने अपने श्रम विचार को प्रेम व सहयोग के विचार के अनुरूप विकसित किया है। महात्मा गाँधी के सामाजिक चिन्तन में वर्ण–व्यवस्था एक अहम स्थान रखता है। उनका कहना है कि एक स्वस्थ सामाजिक–जीवन सहयोग के प्रति निष्ठा तथा कार्य–विभाजन पर ही टिक सकता है। समाज में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति समाज के हित में अपनी शक्ति के अनुरूप योगदान करता रहे। वे मानते हैं कि प्राचीन हिन्दू सामाजिक–व्यवस्था में वर्ण–व्यवस्था इसी आधार पर विकसित हुई थी। वर्ण–व्यवस्था में यह समझ प्रभावी थी कि व्यक्ति की कुछ अपनी सीमाएं होती हैं, कुछ अपनी शक्ति होती है, एक ही व्यक्ति सभी कार्य नहीं कर सकता। समाज में व्यक्ति को अपनी शारीरिक व बौद्धिक क्षमता के अनुरूप कार्य करने का प्रोत्साहन मिलना चाहिए। इसी आधार पर प्राचीन वर्ण–व्यवस्था में कुछ कार्यों को कुछ विशेष व्यक्तियों के लिए निर्धारित किया गया था। वहाँ यह स्पष्ट विचार था कि समाज का कोई कार्य न श्रेष्ठ है न निम्न। यह व्यवस्था काल–क्रम में विकृत होती चली गयी। गाँधी वर्तमान हिन्दू–समाज में प्रचलित जाति–भेद से दुःखी थे। उनके अनुसार वर्तमान सामाजिक व्यवस्था वर्ण–व्यवस्था का सर्वथा दुषित एवं विकृत रूप है क्योंकि इसमें वर्ण की मूल अवधारणा नष्ट हो गयी है। वर्ण जन्म के आधार पर जाति को नहीं स्वीकारता

एसो० प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, म०मो०मा० स्ना० महाविद्यालय भाटपाररानी, देवरिया (उ०प्र०), भारत

अनुरूपी लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-II, Issues-20, YEAR- June-2021

बल्कि वह आधार था–व्यक्ति की अपनी कार्य–क्षमता तथा समाज में कार्य–विभाजन की अनिवार्यता। उस व्यवस्था में ब्राह्मण इस कारण ब्राह्मण नहीं था क्योंकि वह ब्राह्मण माँ–बाप से उत्पन्न था बल्कि इसलिए ब्राह्मण था कि वह समाज में अपना योगदान वैसे ही कर्मों के द्वारा कर रहा था, जिसे ब्राह्मण के कर्म के अंतर्गत रखा गया था। उसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य तथा शुद्र भी अपने–अपने कार्यों के अनुरूप जाने जाते थे। प्रारम्भ में समदृष्टि थी, स्पष्ट समझ थी कि कोई अपने निर्धारित कर्म के कारण ऊँचा या नीचा नहीं होता क्योंकि समाज के लिए सभी कार्य एक जैसे हैं, समान रूप से उपयोगी हैं। सामाजिक असमानता या भेद को समाप्त करने के लिए गाँधी ने एक अनुपम विचार दिया है जसे अन्नदायी श्रम–सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। यह विचार उनके मन में टालस्टाय तथा रस्कीन के लेखों से तथा बाइबिल एवं गीता के अध्ययन से आया है। गाँधी कहते हैं कि बाइबिल में कहा गया है–पसीने की रोटी खाओ, गीता में कहा गया है– जो ऐसी रोटी खाता है जिसके लिए उसने श्रम नहीं किया, वह चोरी की रोटी खा रहा है। अन्नदायी श्रम से गाँधी का तात्पर्य यह है कि हर व्यक्ति को जीवित रहने के लिए श्रम करना आवश्यक है। व्यक्ति अपने वर्ण में निर्धारित कर्त्तव्यों का निर्वहन करे साथ ही अपनी रूचि व क्षमता के अनुसार खेती, बुनाई, बागवानी, पशु–सेवा, वृक्ष–सेवा, कलाकारी इत्यादि भी करे। वे कहते हैं कि एक शारीरिक श्रम ऐसा है जो सभी कर सकते हैं वह अपने आस–पास सफाई कर सकता है, अपना अपमार्जक अपना भंगी, अपना मेहतर स्वयं बन सकता है। मानसिक श्रम करने वाले भी ऐसा ही करे तो शारीरिक श्रम की गरिमा बनी रहेगी।

सामाजिक असमानता को दूर करने के लिए गाँधी ने सम–मजदूरी के सिद्धान्त की अनुशंसा की है। उनके अनुसार यह सिद्धान्त एक स्वस्थ समाज की आर्थिक संरचना का आधार बन सकता है। गाँधी आर्थिक विषमता को एक सामाजिक अभिशाप विचारते हैं। उनका मानना है कि सभी कार्य समान रूप से अनिवार्य हैं एवं पवित्र हैं। अतः गाँधी की स्पष्ट अनुशंसा है कि हर प्रकार के कार्य करने वाले व्यक्ति का वेतन या उसकी मजदूरी समान होनी चाहिए। श्रम तथा मजदूरी की समानता की चर्चा में श्रम एवं पूँजी के सम्बन्ध पर भी विचार गाँधी ने किया है। उनकी दृष्टि में श्रम पूँजी से श्रेष्ठतर है। पूँजी स्वार्थ का प्रतीक है, श्रम कर्म का प्रतीक है। यहाँ देखा जाए तो गाँधी के विचार मार्क्स के समान हो जाते हैं। किन्तु ध्यान देने की बात यह है कि मार्क्स पूँजीपति का पूर्ण निरसन चाहते हैं तथा उसके लिए शक्ति तथा हिंसा के प्रयोग का समर्थन करते हैं। किन्तु गाँधी ऐसा नहीं चाहते। वे श्रमिक एवं पूँजीपति के मध्य संघर्ष नहीं चाहते हैं। उनका विश्वास है कि सामाजिक व्यवस्था का आधार प्रेम तथा विश्वास है। गाँधी ने यहाँ पर न्यासता का सिद्धान्त स्थापित किया है। गाँधी जी मानते हैं कि पूँजीपति भी मानव ही हैं, अतः अन्य मानवों के समान उनमें भी अनिवार्य रूप से शुभत्व विद्यमान है। यदि प्रेम व्यवहार तथा विश्वासपूर्वक उनके शुभत्व को जगाया जाय। उन्हें विश्वास दिलाया जाय कि उनके पास जो धन या संपत्ति है उसे गरीबों के, अभाव ग्रस्तों के कल्याण में लगाना है। उनके पास जो पूँजी है वह श्रमिकों के श्रम के आधार पर एकत्रित होकर जमा हुए हैं। वह जमा धन वैयक्तिक उपभोग के लिए नहीं बल्कि जनहित के लिए है। अमीर लोग उस धन के, सार्वजनिक अमानत के रक्षक हैं। उनका भोग करना अनैतिक एवं धर्म के विरूद्ध है। गाँधी कहते हैं कि प्रेम और विश्वास से जीवन में आततायी का भी हृदय–परिवर्तन किया जा सकता है। व्यक्ति विशेष के पास धन का संचय होना उसकी शारीरिक व मानसिक क्षमता की उपलब्धि है। प्रकृति ने सबको एक समान क्षमतावान नहीं बनाया है। कुछ व्यक्ति अत्यधिक कुशल होते हैं। इसलिए आर्थिक समानता को कठोरता से लागू करना व्यवहारिक नहीं है। इसके परिणाम सुखद नहीं होंगे। किन्तु सक्षम का दायित्व है कि वे अक्षम का सहारा बनें। ऐसा होने पर समाज में प्रेम, विश्वास व विकास फलीभूत होंगे। गाँधी का लक्ष्य एक ऐसे समाज की स्थापना है जहाँ शांति तथा आनंद का वास है। इसके लिए उन्होंने स्त्री व पुरूष के सम्बन्धों एवं स्थितियों पर भी विचार किया है। उनका कहना है कि समाज का हर पुरूष तथा हर स्त्री अपने कर्त्तव्यों व दायित्वों का उचित रूप से निर्वहन करे। ऐतिहासिक कारणों से आज की नारी हर क्षेत्र में जीवन के प्रत्येक अंशों में पुरूष की प्रतिस्पर्धा में खड़ी हो गयी है। वह पुरूषों की नकल भी करने लगी है। पुरूष भी अपने को श्रेष्ठतर समझते हैं एवं नारियों को सम्पत्ति समझते हैं। यह स्थिति दुर्भाग्यपूर्ण है। एक स्वस्थ समाज में दोनों का योगदान होता है। गाँधी कहते हैं कि पुरूष हो या स्त्री–दोनों की आत्मा तो एक ही है। पुरूष अपनी शारीरिक संरचना में बलशाली है इसलिए उसे कड़ी मेहनत, परिवार के भरण–पोषण का कार्य मिला है। नारी स्वभाव से प्रेम रूप है, जननी है। वह घर को संवारती है, बच्चों को पालती है– यह कार्य उसे मिला है। दोनों को एक बहुत ही बृहत् उत्तर दायित्व मिला है– मानव जाति को जीवित रखने का विवाह सम्बन्ध इसलिए गाँधी की दृष्टि में बड़ा आध्यात्मिक कर्त्तव्य है।

महात्मा गाँधी के राजनैतिक विचार उनके धार्मिक एवं नैतिक विचारों के अनुरूप हैं। सामान्य तौर पर यह माना जाता है कि राजनीति में दक्षतापूर्वक झूठ बोलना, धोखा करना, बेईमानी से सफलता प्राप्त कर लेना सब जायज है। राजनीति में यह सब चलता है। राजनीति चतुर व्यक्तियों का खेल है इत्यादि। किन्तु गाँधी राजनीति को भी धर्म एवं नैतिकता का अनुगामी बना देते है। अपवित्र साधन से प्राप्त साध्य गाँधी जी को स्वीकार नहीं है। अपने राजनीतिक विचारों में उन्होंने राजनीतिक स्वतंत्रता

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-II, Issues-20, YEAR- June-2021

को अनिवार्य माना है। उन्होंने राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए स्वराज की मांग की थी और इसके लिए उन्होंने अहिंसक आन्दोलन चलाया था। उनके स्वराज के आदर्शों में यह प्रभावी है कि देश में अपना शासन हो तथा शासक वर्ग जनसाधारण की भावनाओं एवं आवश्यकताओं की कद्र करें। वे स्वराज में शिक्षा एवं राजनीतिक जागरूकता को भी अनिवार्य विचारते हैं। उन्होंने राज्य के साथ व्यक्ति या जन के सम्बन्धों पर भी विचार किया है। गाँधी यहाँ पर मात्र समुदाय के हितों के पक्षपाती नहीं हैं बल्कि व्यक्ति के मूल्य एवं महत्व के भी हिमायती हैं। उनका मानना है कि व्यक्ति से ही समाज या समुदाय का निर्माण होता है। किसी भी प्रकार की उन्नति तब तक उन्नति नहीं है जब तक कि वह व्यक्ति को विकास का अवसर न दे। राज्य का प्रधान कार्य व्यक्ति की सुरक्षा एवं विकास के अवसर बनाना है। गाँधी राज्य की मनमानी या शक्ति के दुरूपयोग के सख्त खिलाफ हैं। वे व्यक्ति के लिए एक परम कर्त्तव्य निर्धारित करते हैं कि वह राज्य को अनैतिक व निरंकुश न बनने दे। इस कार्य में नैतिक दबाव, असहयोग, अवज्ञा, सत्याग्रह, हड़ताल का सहारा लिया जा सकता है। हड़ताल की अनुमति उन्होंने विशेष परिस्थितियों में दी है। चाहे व्यक्ति हो या राज्य इनमें से कोई यदि स्वार्थ, द्वेष, शत्रुता आदि के अनुरूप कार्य करता है तो सम्पूर्ण व्यवस्था दुषित हो जाती है। इस सम्बन्ध में गाँधी राज्य को निरंकुश न होने देने का उपाय भी बताते हैं। उनके मत में शक्ति का केन्द्रिकरण शोषण का आधार बन जाता है। शक्ति को एक ही जगह केन्द्रित नहीं होना चाहिए। अतः राज्य में शक्ति का, पूँजी का विकेन्द्रीकरण अनिवार्य है। विकेन्द्रित राजनीतिक व्यवस्था की इकाई ग्रामीण गणतंत्र एक उत्तम विकल्प है। ऐसा होने पर प्रत्येक व्यक्ति सत्ता में भागीदार होता है एवं सत्ता प्रत्येक व्यक्ति में नीहित होती है। गाँधी राजकीय व्यवस्था की इकाई के रूप में आत्मनिर्भर गांव की भी कल्पना करते हैं। ऐसी व्यवस्था में लोग स्वेच्छा से पारस्परिक सहयोग के आधार पर ग्राम पंचायत की स्थापना करेंगे जो ग्राम की सामाजिक व राजनैतिक व्यवस्था को संभालेगी। इस प्रकार से जब राज्य का गठन होगा तो वह आदर्श राज्य बन सकेगा। वास्तव में आदर्श राज्य ग्रामीण गणतंत्रों का राज्य होगा। गाँधी के आदर्शों में सर्वोदय भी एक परम आदर्श है– सबका उदय, सबका शुभ। सर्वोदय विचार में कहा गया है कि प्रत्येक कर्म, सामाजिक एवं राजनीतिक योजनाओं तथा क्रियाओं का एक ही लक्ष्य है– सबका शुभत्व, सबका विकास, सबका सुख। ऐसी उपलब्धि पंचायती राज व्यवस्था में ही सम्भव है। आदर्श राज्य में पुलिस, न्यायालय एवं सेना का कार्य न्यूनतम होगा। अपराधी को दण्ड दिया जाएगा किन्तु वह सुधारात्मक होगा। जिनके पास भी शक्ति होगी वे उसका प्रयोग अधिकतम जनसेवा में करेंगे। गाँधी जी यह मानते हैं कि ऐसा होना सरल नहीं है किन्तु पुलिस एवं न्याय–व्यवस्था को इस दिशा में कार्य करना है। हिंसा व शस्त्र–प्रयोग गाँधी को मान्य नहीं है। वे ऐसा मानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति में शुभत्व है। अतः उसे नैतिकता के पथ पर चलाया जा सकता है। इसके लिए उन्होंने शिक्षा को एक महत्वपूर्ण साधन माना है। शिक्षा का मूल लक्ष्य नैतिक शिक्षा है, चरित्र निर्माण है, इस विश्वास को उत्पन्न करना है कि आदर्श की प्राप्ति के लिए स्वार्थ एवं वैयक्तिक सुखों से ऊपर उठना है। गाँधी तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था से संतुष्ट नहीं दिखते हैं। वे शिक्षा को सैद्धान्तिक, जानकारी देने वाला होने से संतुष्ट नहीं हैं। शिक्षा का व्यवहारिक पक्ष मजबूत होना चाहिए। शिक्षा में कुछ कौशल विकास के लिए स्थान मिलना चाहिए जैसे–बुनाई, बागवानी, मिट्टी के बर्तन बनाना, काष्ठ कला, गीत, संगीत, खेल इत्यादि। व्यक्ति के शिक्षण के क्रम में ही उसे श्रम का महत्व समझ जाना अनिवार्य है। इस प्रकार की बुनियादी शिक्षा के बड़े–बड़े उपयोग समाज में हो सकते हैं।

अपने राजनीतिक विचारों में गाँधी ने स्वदेशी की अवधारणा एवं महत्व को व्यापक रूप में प्रस्तुत किया है। स्वदेशी से तात्पर्य है– अपने देश का। उन्होंने स्वदेशी विचार का उपयोग सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक तीनों पक्षों में किया है। स्वदेशी शब्द का विस्तृत अर्थ है– अपने देश में निर्मित वस्तुओं का प्रयोग तथा विदेशी सामानों का बहिष्कार। यह अर्थ भी कुछ विशेष परिस्थितियों के लिए अनुशंसित है। अपने देश के उद्योगों, कुटिर उद्योगों की सुरक्षा के लिए, रोजगार सृजन के लिए यह अनिवार्य है। पर यदि विदेशी सामानों के उपयोग से अपने देश के उद्योगों को हानि न हो, विदेशी वस्तुएं उपयोगी एवं लाभप्रद हो तो स्वदेशी के विचार में लोच होना अच्छी बात होगी। स्वदेशी की अवधारणा में समझदारी दिखाना है, अंधविश्वास नहीं। गाँधी यहाँ तक मानते हैं कि यदि बाहर की पूँजी से खादी को प्रोत्साहन मिलता है तो यह स्वदेशी विचार के सर्वथा अनुकूल होगा। वे यह भलीभांति समझते हैं कि कोई भी देश अपने में पूर्ण विश्व नहीं है। राष्ट्रीयता एवं अंतर्राष्ट्रीयता परस्पर विरोधी नहीं बल्कि एक दूसरे के पूरक हैं। इस एकत्व की अनुभूति में सर्वांग प्रेम का राज छिपा है। स्व से ऊपर उठना प्रेम के विस्तार व सम्पूर्णता के लिए आवश्यक है। स्व से ऊपर उठकर परिवार तक, परिवार से समाज तक, समाज से राष्ट्र तक तथा पुनः राष्ट्र से समस्त मानव जाति तक प्रेम का विस्तार होना चाहिए। इस प्रकार कहा जा सकता है कि गाँधी की राष्ट्रीय भावना अंतर्राष्ट्रीयता का विरोधी नहीं है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है– यदि मैं अपने देश के प्रति प्रेम रखता हूँ तो इसमें किसी प्रकार की बुराई नहीं है– कोई खोट नहीं है। खोट तब उत्पन्न होता है जब मैं देश–प्रेम के आवेश में दूसरे देशों के प्रति दुर्भावना पालता हूँ। गाँधी ने जिस प्रकार मानवों के लिए उपरोक्त बातें कही है, वैसी ही बातें राष्ट्रों के लिए भी कही है। उनके अनुसार प्रत्येक राष्ट्र को

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-II, Issues-20, YEAR- June-2021

अन्य राष्ट्रों के प्रति प्रेम व मित्रवत व्यवहार करना चाहिए। वे निरस्त्रीकरण पर बल देते हुए समानता, सहअस्तित्व, प्रेम, सहयोग एवं मानव सेवा के उच्च आदर्शों पर चलने के लिए दुनियाँ के देशों को एक संदेश देते हैं। वस्तुतः गाँधी अपने सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों में अनुपम व अद्वितीय हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय राजनीति विचारक, ओम प्रकाश गावा, मयूर पेपर बैक्स।
2. समकालीन भारतीय दर्शन, बसंत कुमार लाल, मोतीलाल बनारसीदास।
3. समकालीन विश्व एवं भारत, अरूणोदय वाजपेयी, पीअरसन इण्डिया।
4. मेरे सपनों का भारत, महात्मा गाँधी, मनोज पब्लिकेशन।
5. समकालीन भारतीय चिंतक, रमेशचन्द्र सिन्हा एवं विजयश्री डिसेन्ट बुक्स।
6. विभिन्न पत्रिकाएं।

*****